ॐ: आभार प्रदर्शन :ॐ

पुस्तक के प्रकाशन में निम्नानुसार आर्थिक सहयोग मिला है।

मैं उन सब सज्जनों का हार्दिक आभार प्रदर्शन करता हूं।

(१) दिगम्बर जैन समाज, सिरौंज (म. प्र.) ५०० प्रति

(२) श्री सौ. ब्र. मूंगाबाईजी जैन (धर्मपत्नि स्व. श्री हुकमचन्दजी वैद्यरत्न) सिरौंज ३०० प्र॰

(३) श्री सच्चिदानन्द जैन न्यास, सिरौंज २०० प्र॰

कुल १,०००

मन्त्री—
दिगम्बर जैन समाज, सिरौंज

दि. जैन समाज सिरोंज को है। इसका स्वाध्याय कर सभी बन्धु आत्म कल्याणरत हों, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

विनीत:—
हजारीलाल ना
अध्यक्ष

दि. १-८-९८

⋑: शुद्धि-पत्रक :⋐

कृपया निम्नांकित 'शुद्धि-पत्रक' से प्रति शुद्ध कर
स्वाध्याय करें:—

पेज नं.	लाइन नं.	अशुद्ध	शुद्ध
१.	१२	चरित्र	चारित्र
२.	५	जोव	जीव
३.	६	(मन्तर वियोग काल)	मन्तर (वियोग काल)
११.	४	श्रेणा	श्रेणी
१२.	४	हाता	होता
११.	२	पुद्गलों	पुद्गलों
१३.	१३	समूर्छन	संमूर्छन

पेज नं.	लाइन नं.	अशुद्ध	शुद्ध
१४.	५	तोन	तीन
१७.	६	तनरलेश्या	तरले
२०.	८	सुवर्णकूला	सुव
२१.	१३	जोवों को	जी
२२.	१	जोवों को	जी
२७.	४	'नवग्रैवेयक' के पश्चात 'नव छपने से रह गया है, सो लि	
२७.	३	प्रणात	
२७.	६	दोप्त	
२७.	११	दृम	
२९.	४	मनुदरों	
३०.	१	हो है	
३०.	२	को	

. लाइन नं.	अशुद्ध	शुद्ध
१२	असख्यात	असंख्यात
७	लोककाश	लोकाकाश
१५	अवकर्णवाद	अवर्णवाद
८	शोल	शील
५	श्रत	श्रु त
२	सम्यकत्व	सम्यक्त्व
५	मोहनीय	मोहनीय
१	लीम	लोम
५	निमित्त	निमित्त
१५	चतुरिन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय
३	संघात १	संघात ५
१३	प्रदास्त	प्रशस्त
६	कम	कर्म

पेज नं.	लाइन नं.	अशुद्ध	शुद्ध
७०.	८	च्युतन	च्युत न
७१.	१०	गियारह सम्भव परीषह हैं	गियारह परीषह सम्भव हैं
७२.	१२	एक्य	ऐक्य
७८.	११	सान्‌	साधु
८०.	९	अन्त मुहुर्त	अन्तर्मुहुर्त
९४.	७	पया	पाया

नोटः—द्रष्टि दोष से यदि और भी अशुद्धियाँ रह गई हों तो पाठक गण सुधार लें। ऐसी विनम्र प्रार्थना है।

॥ ॐ ॥

श्री वीतरागाय नमः

ॐ: मोक्ष शास्त्र :ॐ

(तत्वार्थ सूत्र)

॥ मंगलाचरण ॥

मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभू – भृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्वानां, वन्दे तद् गुण लब्धये ॥१॥

मोक्ष मार्ग में लेजाने वाले, कर्म रूपी पर्वतों के विदारक और जगत के तत्वों को जानने वाले को इन गुणों की प्राप्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूं।

॥ पहिला अध्याय ॥

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र इन तीनों का एक होना संसार के दुख से छुटकारा पाने का रास्ता है अर्थात् स्वाधीनता का साधन है ॥१॥

अंश को ग्रहण करने वाला ज्ञान) से पदार्थों का जानना होता है ॥६॥

निर्देश (वस्तु स्वरूप का कथन) स्वामित्व (उसका अधिकारी) साधन (कारण) अधिकरण (आधार) स्थिति (समय मर्यादा) और विधान (भेद) इनसे सात तत्वों तथा रत्नत्रय का ज्ञान होता है ॥७॥

सत् (मौजूदगी) संख्या (गिनती) क्षेत्र (वर्तमान निवास) स्पर्शन (त्रिकाल सम्बन्धी निवास) काल (अनादानन्त आदि) (अन्तर वियोग काल) भाव (स्वभाव) अल्प बहुत्व (थोड़ा बहुत पना) इनसे भी सात तत्वों तथा स० दर्शनादि का बोध होता है ॥८॥

मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय और केवल ये पाँच ज्ञान हैं ॥९॥

ये ही प्रमाण हैं ॥१०॥

इनमें आदि के दो ज्ञान परोक्ष हैं ॥११॥

शेष सब प्रत्यक्ष ज्ञान हैं ॥१२॥

मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध, अर्थ भेद रहित मति ज्ञान के ही नाम हैं ॥१३॥

यह मति ज्ञान पाँच इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है ॥१४॥

मति ज्ञान के अवग्रह (दर्शन के बाद अव्यक्त ज्ञान) ईहा (विशेष जानने की इच्छा) अवाय (निर्णय का होना) धारणा (स्मरण बना रहना) ये चार भेद हैं ॥१५॥

बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रु व और इनके उल्टे अल्प, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त, अध्रु व इन १२ प्रकार की अवस्था वाले पदार्थों के अवग्रहादि रूप मति ज्ञान होता है ॥१६॥

उक्त चार प्रकार का मतिज्ञान, पाँच इंद्रिय और मन के निमित्त से १२ प्रकार वाले पदार्थों के अर्थ को ग्रहण करता है ॥ १७ ॥

अव्यक्त शब्दादि का अवग्रह ही होता है ॥ १८ ॥

किन्तु वह नेत्र और मन से नहीं होता ॥ १९ ॥

मति ज्ञान के निमित्त से श्रुतज्ञान होता है, वह दो
कार का है १ अंग बाह्य २ अंग प्रविष्ट । अंग बाह्य के
नेक भेद हैं, अंग प्रविष्ट के आचारांगादि १२ भेद हैं ॥२०॥

देव और नारकियों को जन्म निमित्तक अवधि ज्ञान
ता है ॥ २१ ॥

और क्षयोपशम निमित्तक अवधि ज्ञान मनुष्यों और
र्यंचों के होता है, जो छह प्रकार का है ॥ २२ ॥

मनः पर्यय ज्ञान के १ ऋजु मति २ विपुलमति, दो
द हैं ॥ २३ ॥

इनमें विशुद्धि (परिणामों की शुद्धता) और अप्रतिपात
केवल ज्ञान की प्राप्ति पर्यंत बना रहना) की अपेक्षा
द हैं ॥ २४ ॥

क्योंकि यथार्थ अयथार्थ के भेद को जाने बिना, च्छानुसार कुछ का कुछ जानने के कारण, उन्मत्त(पागल) समान, उक्त ज्ञान विपरीत होते हैं ॥ ३२ ॥

नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, वंभूत, ये नय के सात भेद हैं ॥ ३३ ॥

इस अध्याय में ज्ञान, दर्शन, तत्व, नय, इनका लक्षण तलाया है, और ज्ञान की प्रमाणता दिखाई है ।

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

⋑ दूसरा अध्याय ⋐

✿ जीव तत्व ✿

औपशमिक (जिसके होने में कर्म का उपशम निमि[illegible] है) क्षायिक (जिसके होने में कर्म का [illegible] निमित्त है) मिश्र (जिसके होने में कर्म का [illegible] निमित्त है) औदयिक (जिसके होने में कर्म का [illegible] निमित्त है) और पारणामिक (जो बाह्य निमित्त के [illegible] द्रव्य के स्वाभाविक परिणमन से है) ये पांच भाव [illegible] के निज भाव हैं ॥ १ ॥

इनके क्रम से दो, नौ, अठारह, इक्कीस, और [illegible] भेद है ॥ २ ॥

सम्यक्त्व और चारित्र ये दो औपशमिक भाव है[illegible]

ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व चारित्र, ये नौ क्षायिक भाव हैं ॥ ४ ॥

दर्शनोपयोग के, (चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल दर्शन) चार भेद हैं॥ ९॥

जीव संसारी और मुक्त दो प्रकार के हैं॥ १०॥

मन वाले और मन रहित ये संसारी जीव हैं॥ ११॥

वे संसारी जीव त्रस और स्थावर हैं॥ १२॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति-कायिक, ये पाँच स्थावर हैं॥ १३॥

दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं॥ १४॥

इन्द्रियाँ पाँच हैं॥ १५॥

वे प्रत्येक दो, दो प्रकार की हैं (द्रव्येंद्रिय और भावेंद्रिय)॥ १६॥

द्रव्येंद्रिय के १ निर्वृत्ति (इंद्रियाकार रचना) २ उपकरण (निर्वृत्ति की साधक वस्तु) ये दो भेद हैं॥१७

भावेंद्रियें के दो भेद हैं; १ लब्धि (क्षयोपशम रूप शक्ति की प्राप्ति) २ उपयोग (निवृत्ति, उपकरण, तथा लब्धि के होने पर विषयों में लगना) ॥ १८ ॥

स्पर्शन (त्वचा) रसना (जीभ) घ्राण (नाक) चक्षु (आँख) श्रोत्र (कान) ये पांच इन्द्रियों के नाम हैं ॥१९॥

स्पर्श (त्वचा का) रस (जीभका) गंध (नाक का) वर्ण (आँख का) शब्द (कान का) इस प्रकार ये उन इंद्रियों के विषय हैं ॥ २० ॥

श्रुत (विचार करना) मन का विषय है ॥ २१ ॥

वनस्पति तक के जीवों के एक इन्द्रिय है ॥ २२ ॥

लट, चींटी, भौंरा, मनुष्य आदि के क्रम से एक, एक इन्द्रिय अधिक है ॥ २३ ॥

मन वाले जीव संज्ञी कहलाते हैं ॥ २४ ॥

स्थान में शरीर रूप परिणमाना) गर्भ जन्म और उपपाद (उत्पत्ति स्थान में स्थित वैक्रियक पुद्गलों को शरीर रूप परिणमाना) उपपाद जन्म इस प्रकार तीन भेद जन्म के हैं ॥ ३१ ॥

इनकी सचित्त, शीत, संवृत, अचित्त, उष्ण, विवृत, तथा सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृत विवृत ये नव योनि (उत्पत्ति स्थान) हैं ॥ ३२ ॥

जरायुज (जरायु = जिसमें बच्चा लिपटा रहता है। अंडज (रक्त और वीर्य का बना हुआ, नख के समान कठिन, गोल अंडा) पोत (पैदा होते ही चलने फिरने वाले) इन तीन प्रकार के जीवों का गर्भ जन्म होता है ॥ ३३ ॥

देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है ॥३४॥

बाकी के जीवों का सम्मूर्छन जन्म होता है ॥३५॥

औदारिक (स्थूल शरीर), वैक्रियक (विक्रिया से होने वाला), आहारक (छठे गुण स्थानवर्ती मुनि के सूक्ष्म पदार्थ

के निर्णयार्थ व संयम पालनार्थ प्रगट होने वाला), तैजस (कांतिमय सूक्ष्म प्रभा वाला), कार्मण (ज्ञानावरणादि कर्मों का समूह) ये पांच प्रकार के शरीर हैं ॥३६॥

पहिले शरीरों की बनिस्बत अगले २ शरीर सूक्ष्म हैं ॥३७॥

किन्तु तैजस शरीर से पहिले ३ के तीन शरीर प्रदेशों की अपेक्षा उत्तरोत्तर असंख्यात २ गुणे हैं ॥३८॥

तथा तैजस कार्मण शरीर प्रदेशों की अपेक्षा क्रमशः अनंत गुणे २ हैं ॥३९॥

तैजस और कार्मण शरीर बाधा रहित हैं ॥४०॥

ये दोनों अनादि काल से आत्मा के साथ सम्बन्ध रखने वाले हैं ॥४१॥

तथा सब संसारी जीवों के होते हैं ॥४२॥

इन दो शरीरों को लेकर एक जीव के एक साथ चार शरीर तक हो सकते हैं ॥४३॥

कार्मण शरीर इन्द्रिय विषयों के सुखास्वादन से रहित है ॥४४॥

औदारिक शरीर, गर्भ और संमूर्छन जन्म वालों के होता है ॥४५॥

उपपाद जन्म वाले देव नारकियों के वैक्रियिक शरीर होता है ॥४६॥

तथा मुनियों के ऋद्धि से वैक्रियिक शरीर होता है ॥४७॥

लब्धि निमित्तक भी तैजस शरीर मुनियों के होता है ॥४८॥

आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और बाधा रहित है, यह प्रमत्त संयत मुनि के ही होता है ॥४९॥

नारकी और संमूर्छन जीव नपुंसक होते हैं ॥५०॥
देव नपुंसक नहीं होते ॥५१॥

शेष गर्भजतिर्यंच और मनुष्य तीनों वेद वाले होते हैं ॥५२॥

औपपादिक (देव नारकी) चरमोत्तम शरीरी (तद् भव मोक्षगामी तीर्थंकरादिक) और असंख्यात वर्ष की आयु वाले भोगभूमि के जीवों की अकाल मृत्यु नहीं होती ॥५३॥

इस अध्याय में जीव स्वभाव, लक्षण, गति, जन्म, योनि, देह लिंग, अनपवर्तितायुष्क जीवों के भेद की प्ररूपणा की गई है ॥१॥

● इति द्वितीय अध्याय ●

अथ तीसरा अध्याय

जीव तत्व

रत्न, शर्करा, बालुका, पंक, धूम, तम, महातमप्रभा ये सात भूमि क्रम से एक दूसरे के नीचे हैं, जो घनाम्बु, वात, आकाश के आधार से स्थित हैं ॥१॥

उन भूमियों में क्रम से तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पांच कम एक लाख और केवल पांच नरक (रहने के स्थान) हैं ॥२॥

वे नारकी जीव सदैव अशुभ लतरलेश्या, परिणाम, देह वेदना और विक्रया वाले होते हैं ॥३॥

वे परस्पर एक दूसरे को दुख देते रहते हैं ॥४॥

तीसरे नरक तक संक्लिष्ट असुरों के द्वारा उत्पन्न किये गये दुख वाले भी होते हैं ॥५॥

उनमें बसने वाले नारकी जीवों की बड़ी आयु क्र से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तेतीस साग की हैं ॥६॥

मध्यलोक में जम्बू द्वीप आदि और लवण समुद्र आदि अच्छे २ नाम वाले असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं ॥७॥

वे सभी द्वीप और समुद्र, पहिले के द्वीप समुद्रों को घेरे हुये, एक दूसरे से दुगने २ विस्तार वाले, गोल चूड़ी के आकार में हैं ॥८॥

उन सब द्वीप समुद्रों के बीच में, एक लाख योजन विस्तार वाला, जम्बूद्वीप है, जो गोल है, जिसका केन्द्र सुमेरु पर्वत है ॥९॥

जम्बू द्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, एरावत-वर्ष ये सात क्षेत्र हैं ॥१०॥

उन सात क्षेत्रों को जुदा करने वाले पूर्व पश्चिम लम्बे, ऐसे हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी, शिखरी ये ६ वर्षधर (क्षेत्रों को धारण करने वाले) पर्वत हैं ॥११॥

ये छहों पर्वत क्रम से सोना, चांदी, तपाया हुआ सोना नीलम, चांदी और सोना जैसे रंग वाले हैं ॥१२॥

ये बगलों में मणियों से रंग बिरंगे तथा ऊपर और मूल में समान विस्तार वाले हैं ॥१३॥

इनके ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी महापुण्डरीक, पुण्डरीक नाम के छह ह्रद हैं ॥१४॥

प्रथम ह्रद एक हजार योजन लम्बा (पूर्व से पश्चिम) पांच सौ योजन चौड़ा (उत्तर से दक्षिण) है ॥१५॥

तथा दस योजन गहरा है ॥१६॥

इसके बीच में एक योजन का कमल है ॥१७॥

उनमें रहने वाले नारकी जीवों की बड़ी आयु क्रम से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तेतीस सागर की है ॥६॥

मध्यलोक में जम्बू द्वीप आदि और लवण समुद्र आदि अच्छे २ नाम वाले असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं ॥७॥

वे सभी द्वीप और समुद्र, पहिले के द्वीप समुद्रों को घेरे हुये, एक दूसरे से दुगने २ विस्तार वाले, गोल चूड़ी के आकार में हैं ॥८॥

उन सब द्वीप समुद्रों के बीच में, एक लाख योजन विस्तार वाला, जम्बूद्वीप है, जो गोल है, जिसका केन्द्र सुमेरु पर्वत है ॥९॥

जम्बू द्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, एरावत-वर्ष ये सात क्षेत्र हैं ॥१०॥

उन सात क्षेत्रों को जुदा करने वाले पूर्व पश्चिम बे, ऐसे हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी, खरी ये ६ वर्षधर (क्षेत्रों को धारण करने वाले) पर्वत ॥११॥

ये छहों पर्वत क्रम से सोना, चांदी, तपाया हुआ सोना लम, चांदी और सोना जैसे रंग वाले हैं ॥१२॥

ये बगलों में मणियों से रंग बिरंगे तथा ऊपर और ल में समान विस्तार वाले हैं ॥१३॥

इनके ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केशरी हापुण्डरीक, पुण्डरीक नाम के छह ह्रद हैं ॥१४॥

प्रथम ह्रद एक हजार योजन लम्बा (पूर्व से पश्चिम) ांच सौ योजन चौड़ा (उत्तर से दक्षिण) है ॥१५॥

तथा दस योजन गहरा है ॥१६॥

इसके बीच में एक योजन का कमल है ॥१७॥

शेष ह्रद और उनके कमल इनसे दूने २ हैं ॥१८

उन कमलों में निवास करने वाली श्री, ह्री, धृति कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी ये छह देवियां, एक पल्य की आ वाली हैं, जो सामानिक, पारिषद देवों के साथ निवा करती हैं ॥१९॥

उन सात क्षेत्रों के बीच में से गंगा-सिन्धु, रोहि रोहितास्या, हरित्-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी- कान्ता, सुवर्णकूला-रूप्यकूला, रक्ता-रक्तोदा, नाम नदियां बहती हैं ॥२०॥

दो दो नदियों में से पहिली पहिली नदी पूर्व समु को गई है ॥२१॥

बाकी नदियां पश्चिम समुद्र को गई हैं ॥२२॥

गंगा-सिन्धु आदि नदियां चौदह हजार आदि नदियों से घिरी हुई हैं ॥२३॥

भरत क्षेत्र का विस्तार (उत्तर दक्षिण में) ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है ॥२४॥

विदेह पर्यंत पर्वत और क्षेत्र, इससे दूने दूने विस्तार वाले हैं ॥२५॥

उत्तर के पर्वत और क्षेत्र आदि दक्षिण के पर्वत और क्षेत्र आदि के समान विस्तार के हैं ॥२६॥

भरत और ऐरावत में उत्सर्पिणी (बढ़ने रूप) और अवसर्पिणी (घटने रूप) के छह समयों में (जीवों की आयु, शरीर, वीर्य भोगोपभोग ज्ञान आदि में) वृद्धि और ह्रास होता है ॥२७॥

इनके सिवा शेष भूमियाँ अवस्थित (ज्यों की त्यों) हैं ॥ २८ ॥

हैमवत, हरिवर्ष, देवकुरु के जीवों की स्थिति क्रम से एक, दो, तीन पल्योपम है ॥ २९ ॥

हैरण्यवत, रम्यक, उत्तार कुरु, के जीवों की स्थिति भी उसी क्रमसे एक, दो, तीन, पल्योपम है ॥ ३० ॥

विदेहों में संख्यात वर्ष की आयु वाले हैं ॥ ३१ ॥

भरत क्षेत्र का विस्तार जंबू द्वीप का एक सौ नब्वेवां भाग है ॥ ३२ ॥

धात की खंड द्वीप में मेरु, क्षेत्र आदि सभी जंबू द्वीप से दूने, दूने हैं ॥ ३३ ॥

पुष्कर द्वीप के आधे भाग में भी सभी जंबू द्वीप से दूने, दूने हैं ॥ ३४ ॥

मानुषोत्तर पर्वत के पहिले तक ही मनुष्य हैं ॥ ३५ ॥

वे आर्य और म्लेच्छ दो प्रकार के हैं ॥ ३६ ॥

देव कुरु और उत्तार कुरु को छोड़, कर, भरत, ऐरावत, विदेह क्षेत्र में कर्म भूमियां हैं ॥ ३७ ॥

मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम और जघन्य, अन्त मुंहूर्त है ॥ ३८ ॥

तिर्यंचों की स्थिति भी उतनी ही है ॥ ३९ ॥

इस अध्याय में पृथिवी, लेश्या, आयु, द्वीप, समुद्र, पर्वत, क्षेत्र, तालाब, नदी आदि का प्रमाण, मनुष्य तिर्यंचों की आयु के भेद का वर्णन किया है ॥ १ ॥

॥ इति तृतीय अध्याय ॥

॥ अथ चतुर्थ अध्याय ॥

॥ देव वर्णन ॥

देवों के समुदाय चार प्रकार के हैं, भवन वासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक ॥ १ ॥

पहिले के तीन समुदाय में पीत तक चार लेश्याएँ हैं ॥ २ ॥

भवन वासियों के १०, व्यन्तरों के ८ ज्योतिष्कों के ५ कल्प वासियों के १२ भेद हैं ॥ ३ ॥

इन चार प्रकार के देवों में हर एक के इन्द्र (देवों का स्वामी) सामानिक (आज्ञा ऐश्वर्य को छोड़ कर और बातों में इन्द्र के समान) त्रायस्त्रिंश (मंत्री पुरोहित ३३) पारिषद् (सभासद) आत्मरक्ष (इन्द्र शरीर की रक्षा में निपुण) लोकपाल (कोतवाल—स्थानीय रक्षक) अनीक (सेना) प्रकीर्णक (नगरवासी प्रजा), आभियोग्य (सेवक), किल्विषिक ये दस दस भेद होते हैं ॥४॥

किन्तु अम्बर और ज्योतिष्क में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते ॥५॥

भवनवासी और व्यन्तरों में दो दो इन्द्र हैं ॥६॥

ऐशान तक के देव पुरुषों के समान शरीर से काम सेवन करते हैं ॥७॥

शेष कल्प वासी देव क्रम से स्पर्श (तीसरे चौथे स्वर्ग वाले)करते थे, रूप देखने से (पांचवे से आठवे तक में) (नौवे से बारहवें तक-शब्द सुनने से, और (तेरहवें से सोलहवें तक) मन में चिन्तन से, विषय सुख भोगते हैं ॥८॥

ऊपर के देव काम वासना से रहित हैं ॥९॥

भवन वासी देव १ असुर, २ नाग, ३ विद्युत, ४ सुपर्ण, ५ अग्नि ६ वात ७ स्तनित ८ उदधि ९ द्वीप १० दिक् कुमार ये दश प्रकार के हैं ॥१०॥

॥ अथ चतुर्थ अध्याय ॥

॥ जीव तत्व ॥

देवों के प्रमुख चार समुदाय हैं १ भवन वासी, २ व्यंतर ३ ज्योतिष्क ४ वैमानिक ॥ १ ॥

पहिले के तीन समुदाय में पीत तक चार लेश्याएँ हैं ॥ २ ॥

भवन वासियों के १०, व्यंतरों के ८ ज्योतिष्कों के ५ कल्प वासियों के १२ भेद हैं ॥ ३ ॥

इन चार प्रकार के देवों में हर एक के इन्द्र (देवों का स्वामी) सामानिक (आज्ञा ऐश्वर्य को छोड़ कर शेष बातों में इन्द्र के समान) त्रायस्त्रिंश (मंत्री पुरोहित ३३) पारिषद् (सभासद) आत्मरक्ष (इन्द्र शरीर की रक्षा में नियुक्त) लोकपाल (कोतवाल=स्थानीय रक्षक) अनीक (सेना) प्रकीर्णक (रैयत=प्रजा) आभियोग्य (सेवक), किल्विषिक ये दस दस भेद होते हैं ॥४॥

किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते ॥५॥

भवनवासी और व्यन्तरों में दो दो इन्द्र हैं ॥६॥

ऐशान तक के देव पुरुषों के समान शरीर से काम सेवन करते हैं ॥७॥

शेष कल्प वासी देव काम से स्पर्श (तीसरे चौथे स्वर्ग में)करने से, रूप देखने से (पाँचवे से आठवे तक में) (नौवे से बारहवें तक-शब्द सुनने से, और (तेरहवें से सोलहवें तक) मन में चितवन से, विषय सुख भोगते हैं ॥८॥

ऊपर के देव काम वासना से रहित हैं ॥९॥

भवन वासी देव १ असुर, २ नाग, ३ विद्युत, ४ सुपर्ण, ५ अग्नि ६ वात, ७ स्तनित, ८ उदधि ९ द्वीप १० दिक कुमार ये दस प्रकार

व्यंतर देव १ किन्नर २ किम्पुरुष ३ म
४ गन्धर्व ५ यक्ष ६ राक्षस ७ भूत ८ पिशाच ये
प्रकार के हैं ॥११॥

ज्योतिषी देव १ सूर्य २ चन्द्रमा ३ ग्रह ४
५ प्रकीर्णक तारे ये पांच प्रकार के हैं ॥१२॥

ये मनुष्य लोक में मेरु की प्रदक्षिणा करने
और निरन्तर गमन शील हैं ॥१३॥

इनके द्वारा किया हुआ काल विभाग है ॥१४॥

ये मनुष्य लोक के बाहर ठहरे हुए हैं

चौथे निकाय के देव वैमानिक हैं ॥१६॥

वेकल्पोपन्न (जिन में इन्द्र आदि की क
पाई जाय) और कल्पातीत (अहमेन्द्र) ये दो प्रकार के हैं

जो क्रम से ऊपर ऊपर रहते हैं ॥१८॥

सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत, (ये १६ स्वर्ग) और नवग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सर्वार्थ सिद्धि, में इनका निवास है ॥१९॥

स्थिति, प्रभाव, सुख, दीप्ति, लेश्या विशुद्धि, इन्द्रिय भोग शक्ति, अवधि ज्ञान की सामर्थ्य, ऊपर, ऊपर के देवों में अधिक, अधिक है ॥२०॥

किन्तु गमन करने की इच्छा, शरीर की ऊंचाई, परिग्रह और अभिमान ऊपर, ऊपर के देवों में कम है ॥२१॥

दो युगलों में पीत लेश्या तीन युगलों में पद्म लेश्या और शेष में शुक्ल लेश्या वाले देव हैं ॥२२॥

ग्रैवेयकों से पहले, पहले की 'कल्प' संज्ञा [illegible] ॥

ब्रह्म लोक ही लौकान्तिक देवों [illegible] स्थान है ॥२४॥

सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्यावाध, अरिष्ट, ये आठ प्रकार के लौकान्तिक देव हैं ॥२५॥

विजयादिक के देव दो बार मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष जाते हैं ॥२६॥

देव, नारकी, और मनुष्यों के अतिरिक्त सब संसारी जीव तिर्यंच हैं ॥२७॥

असुर कुमार एक सागर, नाग कुमार तीन पल्य, सुपर्ण कुमार ढाई पल्य, द्वीप कुमार दो पल्य, बाकी के छह भवन वासियों की डेढ़ पल्योपम उत्कृष्ट स्थिति है ॥२८॥

सौधर्म और ऐशान में उत्कृष्ट आयु दो सागरोपम से कुछ अधिक है ॥२९॥

सानत्कुमार माहेन्द्र में कुछ अधिक सात सागरोपम स्थिति है ॥३०॥

अवशेष युगलों में दस, चौदह, सोलह, अठारह, बीस, बाईस, सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ॥३१॥

आरण अच्युत से ऊपर नव ग्रैवेयकों में नव अनुदशों मे, चार, विजयादिक में, एक, एक सागरोपम बढ़ती हुई उत्कृष्ट स्थिति है और सर्वार्थ सिद्धि मे पूरी तैतीस सागरोपम प्रमाण स्थिति है ॥३२॥

सौधर्म ऐशान में जघन्य स्थिति साधिक एक पल्योपम है ॥३३॥

पूर्व, पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति अनन्तर, अनन्तर की जघन्य स्थिति है ॥३४॥

इसी प्रकार नारकियों में भी जघन्य स्थिति है ॥३५॥
पहले नरक के नारकियों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है ॥३६॥

इतनी ही भवन वासी देवों की है ॥३७॥

तथा व्यन्तरों की भी इतनी ही है यानी जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है ॥३८॥

व्यन्तरों की उत्कृष्ट स्थिति साधिक पल्योपम है ॥३९॥

इतनी ही ज्योतिषी देवों की है ॥४०॥

ज्योतिष्कों की जघन्य आयु एक पल्य के आठवां भाग प्रमाण है ॥४१॥

सब लौकान्तिकों की स्थिति आठ सागरोपम प्रमाण है ॥४२॥

इस अध्याय में चारों निकाय के देवों के स्थान, भेद, लेश्या, परापर स्थिति, सुखादि का निरूपण किया है ॥१॥

॥ इति चतुर्थ अध्याय ॥

अथ पांचवां अध्याय

अजीव तत्व

धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार अजीव काय हैं ॥१॥

उक्त चारों द्रव्य हैं ॥२॥

जीव भी द्रव्य है ॥३॥

उक्त द्रव्य नित्य हैं, अवस्थित हैं, अरूपी हैं ॥४॥

किन्तु पुद्गल द्रव्य रूपी हैं ॥५॥

धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्य एक, एक हैं ॥६॥

और निष्क्रिय हैं ॥७॥

धर्म, अधर्म और एक जीव द्रव्य के असंख्यात, असंख्यात प्रदेश होते हैं ॥८॥

आकाश द्रव्य अनन्त प्रदेशी है ॥९॥

पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं ॥१०॥

पुद्गल परमाणु के प्रदेश नहीं होते ॥११॥

इन सब द्रव्यों का अवगाह लोकाकाश में ही है ॥१२॥

धर्म अधर्म द्रव्य का अवगाह पूरे लोकाकाश में है ॥१३॥

पुद्गल का अवगाह लोककाश के एक प्रदेश आदि में होता है ॥१४॥

जीवों का अवगाह लोक के असंख्यात वें भाग आदि में है ॥१५॥

क्यों कि जीव के प्रदेशों का दीपक के समान संकोच और विस्तार होता है ॥१६॥

गमन में और ठहरने में सहायक होना यह क्रमशः धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार है ॥१७॥

स्थान देने में सहायक होना आकाश द्रव्य का उपकार है ॥१८॥

शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास ये पुद्गलों के उपकार हैं ॥१९॥

तथा सुख, दुःख, जीवन, मरण ये भी पुद्गलों के उपकार हैं ॥२०॥

आपस में एक दूसरे का सहायक होना यह जीवों का उपकार है ॥२१॥

वर्तना (वर्तनकराना) परिणाम (पर्याय) क्रिया (हलन चलन रूप व्यापार) परत्व (बड़ा) अपरत्व (छोटा) होना ये काल के उपकार हैं ॥२२॥

पुद्गल स्पर्श, रस, गन्ध और रंग वाले होते हैं ॥२३॥

तथा वे शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, आतप, उद्योत वाले भी होते हैं ॥२४॥

अणु (परमाणु), स्कन्ध (अणुओं का समूह) ये दो भेद पुद्गलों के हैं ॥२५॥

वे भेद से संघात से और भेद, संघात दोनों से स्कन्ध उत्पन्न होते हैं ॥२६॥

अणु भेद से ही उत्पन्न होता है ॥२७॥

भेद और संघात दोनों से अचाक्षुष स्कन्ध नेत्रों के विषय वाला होता है ॥२८॥

द्रव्य का लक्षण सत् (विद्य मानता) है ॥२९॥

जो उत्पाद (नवीन पर्याय की उत्पत्ति), व्यय (पूर्व पर्याय का विनाश), ध्रौव्य (अनादि पारिणामिक स्वभाव रूप से अन्वय बना रहना) इन तीनों से युक्त है। वह सत् है ॥३०॥

अपने स्वभाव से च्युत न होना नित्य है (अपनी जाति में रहते हुये, परिणमन करना, प्रत्येक पदार्थ का स्वभाव

ज्ञान और दर्शन के विषय में किये गये प्रदोष (कुदना दोष लगाना), निन्हव (छिपाना), मात्सर्य (ईर्ष्या, छल करना) अन्तराय (विघ्न डालना), आसादन (अन्य के द्वारा प्रकाशित ज्ञान को आच्छादित करना) उपघात (उसमें दूषण लगाना) ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के आस्रव के कारण हैं ॥१०॥

निज आत्मा में, पर आत्मा में या उभय आत्माओं में स्थित दुःख (पीड़ा), शोक (खेद), ताप (संताप), आक्रन्दन (रोना), वध (मारना), परिदेवन (विलाप करना) ये असाता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं ॥११॥

जीवों पर और व्रतियों पर दया करना, दान (आहार, औषधि, शास्त्र, अभय) देना सराग संयम आदि का उचित ध्यान रखना तथा क्षमा और शौच (निर्लोभता) ये साता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं ॥१२॥

केवली श्रुत मुनिसंघ धर्म और देव का अवर्णवाद (जिसमें जो दोष नहीं है, उसमें उनको कल्पना करना

ये दर्शनमोहनीय कर्म के आस्रव के कारण है ॥१३॥

कषाय के उदय से होने वाला आत्मा का तीव्र परिणाम (स्वयं मे अथवा दूसरों में कषाय उत्पन्न करना, व्रतों में दूषण लगाना आदि) चारित्र मोहनीय कर्म के आस्रव का कारण है ॥१४॥

बहुत आरम्भ और परिग्रह का भाव नरकायु के आस्रव का कारण है ॥१५॥

माया (छल प्रपंच) करने के भाव से तिर्यंच आयु का आस्रव होता है ॥१६॥

अल्प आरम्भ और परिग्रह के भाव से मनुष्यायु का आस्रव होता है ॥१७॥

स्वाभाविक (प्राकृतिक) मृदुता (कोमलता) से भी मनुष्यायु का आस्रव होता है ॥१८॥

शील (३ गुणव्रत ४ शिक्षाव्रत) रहित, और व्रत

(अहिंसादि ५ व्रत) रहित के सभी आयुओं का आस्रव होता है ॥१६॥

सराग संयम (रागीन शुभ संयम) संयमासंयम (व्रता व्रत रूप परिणाम, माने देश चारित्र) अकाम निर्जरा (परवश मे प्राप्त क्षुधादि को शान्ति से सहन करना) बालतप (अज्ञानतप) से देवायु का आस्रव होता है ॥२०॥

सम्यग्दर्शन भी देवायु के आस्रव का कारण है ॥२१॥

मन, वचन, काय की कुटिलता, और अन्यथा प्रवृत्ति से, अशुभनाम कर्म का आस्रव होता है ॥२२॥

योगों की सरलता और यथार्थ प्रवृत्ति से, शुभनाम कर्म का आस्रव होता है ॥२३॥

१ दर्शन विशुद्धि (सम्यग्दर्शन के साथ लोक कल्याण की भावना) २ विनय सम्पन्नता ३ शील और व्रतों का निरतिचार पालन ४ सतत ज्ञानोपयोग ५ सतत संवेग ६ शक्त्यनुसार त्याग ७ और तप ८ साधु समाधि ६ वैयावृत्य करण १० अर्हन्तभक्ति ११ आचार्य भक्ति १२ बहुश्रुत भक्ति १३ प्रवचन भक्ति १४ षडावश्यक क्रियाओं को नहीं छोड़ना १५ मार्ग प्रभावना १६ प्रवचन वात्सल्य, ये सोलह भावना तीर्थङ्कर नाम कर्म के आस्रव को कारण हैं ॥२४॥

पर की निन्दा और अपनी प्रशंसा करना दूसरे के सद् गुणों को (विद्यमान गुणों को) ढंकना, और अपने में सद् गुण न होते हुए भी अपने को गुणी प्रगट करना, नीच गोत्र कर्म के आस्रव का कारण है ॥२५॥

परप्रशंसा, आत्म निंदा, निरभिमानता, दूसरों के गुण प्रगट करना, विनय प्रवृत्ति, आदि से उच्च गोत्र का आस्रव होता है ॥२६॥

विघ्नकरना (दान लाभ आदि में बाधा डालना) अन्तराय कर्म के आस्रव का कारण है ॥२७॥

इस अध्याय में योग, आस्रव, कषाय, भावना, क्रिया आधार भेद का कथन किया है । १॥

❖ इति छट्वां अध्याय ❖

❁ अथ सातवां अध्याय ❁

❁ शुभ आस्रव तत्व ❁

हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह से निवृत्त व्रत है ॥१॥

इनसे किंचित् विरक्त होना देश-
और पूर्ण विरति महाव्रत है ॥२॥

इन व्रतों मे स्थिर होने के
पाँच पाँच भावनायें हैं ॥३॥

वचन गुप्ति (मौन धारण ...
चिन्तन करना), ईर्या समिति (स...
निक्षेपण समिति (वस्तु को देख ...
आलोकित पान भोजन (दिन में दे...
पान करना) ये अहिंसा व्रत की

क्रोध, लोभ, भय, हास्य का त्याग, निर्दोष बोलना(अनु-वीचि भाषण) ये सत्य व्रत की पाँच भावनायें हैं ॥२॥

शून्यागार (खाली स्थान में) में रहना, विमोचिता वास (किसी के छोड़े हुये स्थान में रहना), परोपरोधाकरण (अन्य आगन्तुक को रहने से नहीं रोकना), भैक्ष्य शुद्ध भिक्षा लेना, साधर्मियों से कलह न करना, ये अचौर्य व्रत की पाँच भावनायें हैं ॥३॥

स्त्रियों में अनुराग उत्पन्न करने वाली कहानियों के सुनने का, सोचने का, त्याग, स्त्रियों के सुन्दर अंगों को इच्छा पूर्वक देखने का त्याग, पहिले भोगे हुए भोगों की याद नहीं करना, कामोत्तेजक पौष्टिक खान पान नहीं करना, शरीर की सजावट नहीं करना, ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनायें हैं ॥४॥

पाँचों इन्द्रियों के सुहावने तथा असुहावने, पाँ… विषयों में, राग द्वेष नहीं करना ये अपरिग्रह व्रत … पाँच भावनायें हैं ॥५॥

✿ अथ सातवां अध्याय ✿

✿ शुभ आस्रव तत्व ✿

हिंसा, झूंठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह से निवृत्त होना व्रत है ॥१॥

इनसे किंचित् विरक्त होना देश-विरति (अणु व्रत) और पूर्ण विरति महाव्रत है ॥२॥

इन व्रतों में स्थिर होने के लिये प्रत्येक व्रत की पांच पांच भावनायें हैं ॥३॥

वचन गुप्ति (मौन धारण करना), मनो गुप्ति (आत्म चिन्तन करना), ईर्या समिति (सावधानी से चलना) आदान निक्षेपण समिति (वस्तु को देख भाल कर उठाना धरना), आलोकित पान भोजन (दिन में देख कर शोध कर भोजन पान करना) ये अहिंसा व्रत की पांच भावनायें हैं ॥४॥

क्रोध, लोभ, भय, हास्य का त्याग, निर्दोष बोलना (अनुवीचि भाषण) ये सत्य व्रत की पांच भावनायें हैं ॥५॥

शून्यागार (खाली स्थान में) में रहना, विमोचिता वास (किसी के छोड़े हुये स्थान में रहना), परोपरोधाकरण (अन्य आगन्तुक को रहने से नहीं रोकना), सविधि शुद्ध भिक्षा लेना, सार्धर्मियों से कलह न करना, ये अचौर्य व्रत की पांच भावनायें हैं ॥६॥

स्त्रियों में अनुराग उत्पन्न करने वाली कहानियों के सुनने का, बांचने का; त्याग, स्त्रियों के सुन्दर अंगों को इच्छा पूर्वक देखने का त्याग, पहिले भोगे हुए भोगों को याद नहीं करना, कामोत्तेजक पौष्टिक खान पान नहीं करना, शरीर की सजावट नहीं करना, ये ब्रह्मचर्य व्रत की पांच भावनायें हैं ॥७॥

पांचों इन्द्रियों को सुहावने तथा असुहावने, पांचों विषयों में, राग द्वेष नहीं करना ये अपरिग्रह व्रत की पांच भावनायें हैं ॥८॥

हिंसादि पाँच पापों के करने से यह लोक और पर-लोक दोनों का विनाश होता तथा उभय लोक में निन्दा का पात्र होता, इसलिये इन पापों के त्याग करने में ही अपना कल्याण है ऐसा चिन्तवन करना चाहिये ॥६॥

अथवा ये दुख रूप ही हैं ऐसी भावना करनी चाहिये ॥१०॥

प्राणी मात्र में मैत्री (सबको अपना जैसा समझना), अधिक गुणवान में प्रमोद (हर्ष होना), दुखियों पर दया, अविनयियों में माध्यस्थ (राग द्वेष रहित) भाव की भावना करनी चाहिये ॥११॥

संवेग और वैराग्य के लिये संसार और शरीर के स्वभाव का चिंतवन करना चाहिये ॥१२॥

राग द्वेष रूप प्रवृत्ति से भाव प्राण और द्रव्य प्राण का विनाश करना हिंसा है ॥१३॥

असत् वचन बोलना असत्य है ॥१४॥

बिना दी हुई वस्तु का लेना चोरी है ॥१५॥

मैथुन (विषय सेवन) करना अब्रह्म (कुशील) है ॥१६॥

अन्तरंग बहिरंग चेतन अचेतन किसी भी वस्तु में अपनत्व या स्वामित्व का अनुभव करना परिग्रह है ॥१७॥

जो शल्य (माया, मिथ्या, निदान) रहित हो, वही व्रती है ॥१८॥

व्रती गृहस्थ और मुनि के भेद से दो प्रकार के हैं ॥१९॥

अणुव्रतों का धारक गृहस्थ है ॥२०॥

वह गृहस्थ दिग्विरति (दिशाओं में आने जाने की मर्यादा), देश विरति (नियत समय के लिये क्षेत्र मर्यादा), अनर्थ दण्ड विरति (बिना प्रयोजन के निरर्थक व्यापार का त्याग) ये तीन गुण व्रत और सामायिक (नियत समय के लिये, त्रियोग सम्बन्धी, बाह्य प्रवृत्ति से निवृत्त होकर, समता भाव से, एकत्व का अभ्यास करना तथा णमोकार

मन्त्र आदि का चिन्तवन करना) प्रोषधोपवास (पर्व के दिन पंचेन्द्रियों के विषयों से निवृत्त होकर चार प्रकार के आहार का त्याग करना) उपभोग परिभोग परिमाण (भोजन पानादि उपभोग, बिछौना वस्त्रादि परिभोग इनको आवश्यकता से कम करते हुए परिमाण करना (इस व्रत में उपभोग, परिभोग की वस्तुएँ बदलते रहने का क्रम जीवन पर्यन्त व्रती प्रतिदिन प्रतिज्ञाएं करता रहता है)। अतिथि संविभाग (न्यायोपार्जित द्रव्य में से संयमियों को भक्ति भाव पूर्वक आहार औषधादि देना) ये चार शिक्षा व्रत हैं। इस प्रकार पाँच अणु व्रत, तीन गुण व्रत, चार शिक्षा व्रत; इन बारह व्रतों का व्रती गृहस्थ को निर्दोष पालन करना चाहिये ॥२१॥

वह गृहस्थ जीवन के अन्तिम समय में सल्लेखना (भले प्रकार से काय और कषाय का कृश करने वाला) का भी आराधक होता है ॥२२॥

शंका (धर्म के मूलाधार के विषय में शंका करना), कांक्षा (इह लोक और परलोक के विषयों की अभिलाषा करना), विचिकित्सा (मुनियों के शरीर को मलिन देख घृणा करना), अन्य दृष्टि प्रशंसा (विपरीत मार्गियों की तारीफ करना), अन्य दृष्टि संस्तव (मिथ्या दृष्टियों में विद्यमान अविद्यमान गुणों की बड़ाई करना) ये सम्यग्दर्शन के पांच अतिचार हैं ॥२३॥

पांच व्रत और सात शील के भी पांच पांच अतिचार हैं। जो क्रम से इस प्रकार है ॥२४॥

बन्ध (बांधना), वध (मारना), छेद (अवयव छेदना), अधिक बोझा लादना, खाना पीना रोकना ये अहिंसाणु व्रत के पांच अतिचार हैं ॥२५॥

मिथ्योपदेश (झूंठी शिक्षा, झूंठी गवाही देना) रहोभ्याख्यान (गुप्त बात प्रगट करना), झूंठा मजमून (लेख)

लिखना, भूली हुई धरोहर हड़पना, किसी चेष्टा से पर के अभिप्राय को जान कर प्रगट कर देना, ये सत्याणु व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२६॥

चोरी करने का उपाय बताना, चोरी करके लाये हुए द्रव्य को लेना, राज्य के नियमों का उल्लंघन करना, देने लेने के बाँट आदि कम बढ़ रखना, असली में नकली वस्तु मिलाकर बेचना। ये अचौर्याणु व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२७॥

गृहस्थ कर्तव्यातिरिक्त विवाह करना, विवाहिता व्यभिचारिणी स्त्री गमन, अविवाहित कन्या, वेश्या आदि गमन, कामांग छोड़ कर अन्य अंगों में क्रीड़ा करना, काम सेवन की अत्यन्त अभिलाषा होना, ये ब्रह्मचर्याणु व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२८॥

खेत-मकान, चाँदी-सोना, पशु-धान्य, नौकर-नौकरानी

कायक्षेत्र के निश्चित प्रमाण का उल्लंघन करना । ये परिग्रह परिमाणाणु व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥ २९ ॥

निश्चित की हुई, ऊपर की सीमा, नीचे की सीमा, तिरछी सीमा का उल्लंघन करना तथा चारों ओर के निश्चित परिमाण में से किसी एक दशा का क्षेत्र बढ़ा लेना, निश्चित क्षेत्र मर्यादा को भूल जाना । ये दिग्विरति व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३०॥

स्वयं न जाकर मर्यादा से बाहर की वस्तु को किसी दूसरे के लिये लाने की प्रेरणा करना, न तो स्वयं जाना न दूसरे को भेजना, किन्तु बैठे बिठाये नोकर आदि को आज्ञा देकर काम करा लेना, मर्यादा के बाहर स्थित किसी व्यक्ति से शब्द के द्वारा काम लेना, बिना बोले केवल आकृति से संकेत करना, कंकर पत्थर फेंक कर काम निकालना । ये देश विरति व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३१॥

राग वश हास्य के साथ असभ्य भाषण करना, दूसरे को लक्ष्य करके शारारिक कुचेष्टायें करना, धृष्टता पूर्वक व्यर्थ प्रलाप करना, अविचारित आवश्यकता से अधिक कार्य करना, आवश्यकता से अधिक भोग उपभोग के पदार्थों का संग्रह व व्यय करना। ये पांच अनर्थ दण्ड विरति व्रत के अतीचार हैं ॥३२॥

सामायिक करते समय १ शरीर को स्थिर न रखकर चलाते रहना, २ गुनगुनाने लगना, ३ मन में अन्य विकल्प लाना, ४ ज्यों त्यों कर सामायिक को पूरा करना, ५ पाठ या आवश्यक क्रिया की स्मृति न रहना। ये सामायिक व्रत के पांच अतिचार हैं ॥३३॥

बिना देखे शोधे १ जमीन पर मल मूत्रादि करना, २ उपकरण लेना, ३ बिस्तर चटाई आदि बिछाना, ४ उत्साह न रख व्रत का अनादर करना, ५ चित्त की चंचलता वश व्रत को भूल जाना, ये प्रोषधोपवास व्रत के पांच अतीचार हैं ॥३४॥

१ सचित्ताहार (वनस्पतिक आदि का भोजन में उपयोग करना) २ सचित्त सम्बन्धाहार (उपर्युक्त सचित्त वस्तु से जिस, अचित्त वस्तु का सम्बन्ध हो गया हो उसको भोजन में लेना), ३ सचित्त सम्मिश्राहार (सूक्ष्म जन्तुओं से मिश्रित भोजन का आहार करना) ४ अभिषवाहार (पुष्टिकर मादक द्रव पदार्थ तथा गरिष्ठ पदार्थों का सेवन करना) ५ दुःपक्वाहार (अधपका अधिक पका अथवा, या, जला हुआ भोजन करना) ये उपभोग परिभोग परिमाण व्रत के पांच अतीचार हैं ॥३५॥

खान पान की वस्तु संयम के काम न आसके इस अभिप्राय से १ सचित्त पत्ते आदि पर रख कर देना २ सचित्त पत्ता आदि से ढक देना ३ अपनी चीज को अन्य की कह कर देना ४ अनादर भाव रखना ५ दान के समय को टाल कर देना ये अतिथि संविभाग व्रत के पांच अतीचार हैं ॥३६॥

१ सत्कार वैयावृत्त्यादि देख जीने की इच्छा, २ सत्कार सेवादि न देख जल्दी मरने की इच्छा ३ मित्रों के अनुराग का स्मरण ४ पूर्व में भोगे हुए भोगों का स्मरण ५ तप आदि के फल को भोग के रूप में चाह (निदान) ये सल्लेखना व्रत के पांच अतीचार हैं ॥३७॥

अपनी और पर की भलाई के लिये अपनी वस्तु का त्याग करना, दान है ॥३८॥

विधि, द्रव्य, दाता, और पात्र की विशेषता से दान के फल में विशेषता आती है ॥३९॥

इस अध्याय में व्रत, और व्रतों की भावना, शील व्रत, अतीचारादि का निरूपण किया है ॥१॥

इति सातवां अध्याय

अथ आठवां अध्याय

० बन्ध तत्त्व ०

मिथ्या दर्शन (वस्तु का अयथार्थ श्रद्धान) अविरति (छह काय के जीवों की हिंसा और पांच इन्द्रिय मन के विषय में विरक्त न होना) प्रमाद (अपने कर्तव्य में अनादर भाव असावधानता) कषाय (कालिमा रूप आत्म परिणामों में अनिर्मलता) योग (आत्म प्रदेशों का परिस्पन्द) ये पांच बन्ध के कारण हैं ॥१॥

जीव कषाय सहित होने से, कर्म के योग्य (लायक) पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बन्ध है ॥२॥

उसके, प्रकृति (कर्म रूप स्वभाव का पड़ना) स्थिति (काल मर्यादा) अनुभव (फल देने की शक्ति) प्रदेश (एक क्षेत्रावगाह रूप सम्बन्ध) ये, चार भेद हैं ॥३॥

२ निद्रा निद्रा (जिसके उदय से ऐसी गाढ़ नींद आवे, जिससे जगाने पर भी न जग सके) ३ प्रचला (इस कर्म का उदय ऐसी नींद में निमित्त है, जिससे बैठे बैठे ही नींद आजावे) ४ प्रचला प्रचला (जिसके बैठे बैठे वा खड़े खड़े बार बार नींद आवे) ५ स्त्यानगृद्धि (जो कई कार्य करके भी जागने पर उसकी याद न आवे) ये भी दर्शनावरण के भेद हैं ॥८॥

जिसका उदय जीवको सुख के होने में निमित्त है, वह साता वेदनीय, और जो दुःख के होने में निमित्त है, वह असाता वेदनीय, ये दो वेदनीय कर्म के भेद हैं ॥९॥

दर्शन मोहनीय के तीन भेद १ जिसका उदय तत्वों के यथार्थ स्वरूप के श्रद्धान न होने देने में निमित्त है, वह मिथ्यात्व मोहनीय २ जिसका उदय तात्विक रुचि में

बाधक न होकर भी उसमें चल, मलिन, अगाढ़ दोष के
उत्पन्न करने में निमित्त है, वह सम्यक्त्व मोहनीय
जिसका उदय मिले हुए परिणामों के होने में निमित्त
जो न केवल सम्यक्त्व रूप, और न केवल मिथ्यात्व
किन्तु उभय रूप होते हैं, वह मिश्र मोहनीय कर्म
ये दर्शन मोहनीय के ३ भेद हुए। चारित्र मोहनीय
भेद हैं १ अकषाय वेदनीय २ कषाय वेदनीय।
वेदनीय के नो भेद १ हास्य (जो हंसी में निमित्त
२ रति (जो क्रीड़ा में निमित्त हो,) ३ अरति
(खेद) ५ भय (डर) ६ जुगुप्सा (ग्लानि) ७
(जो जो भावों के होने में निमित्त है) प
६ नपुंसकवेद, ये नो अकषाय वेदनीय के भेद
कषाय वेदनीय के सोलह भेद १ संसार का क
से मिथ्या दर्शन अनन्त कहलाता है, जो

नुबन्धी हो, वह अनन्तानु बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ है। २ जिसका उदय जीव को देश व्रती नहीं होने में निमित्त है, वह अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, है। ३ जिसका उदय जीव के सर्व विरति के नहीं धारण करने में निमित्त है, वह प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान माया, लोभ है। ४ जिसका उदय सर्व विरति का प्रतिबन्धक नहीं, किन्तु प्रमाद के लगाने में निमित्त है वह संज्वलन क्रोध, मान माया, लोभ है। इस तरह मोहनीय कर्म के अट्ठाईस भेद हुए ॥६॥

जिनका उदय नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देवपर्याय में जाकर जीवन विताने में निमित्त होता है, वे नरक, तिर्यंच, मनुष्य देव आयु कर्म के चार भेद हैं ॥१०॥

नाम कर्म की प्रकृतियाँ १ गति ४ (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य देव) २ जाति ५ (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय) ३ शरीर ५ (औदारिक, वैक्रियिक,

आहारक, तैजस, कार्माण), ४ अंगोपांग ३ (औदारिक, वैक्रियक, आहारक) ५ निर्माण २ (स्थान, प्रमाण), ६ बन्धन ५ (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण), ७ संघात ५ (औदारिकादि), ८ संस्थान ६ (समचतुरस्र, न्यग्रोध परिमंडल, स्वाति, कुब्जक, वामन, हुण्डक), ९ सहनन ६ (वज्रवृषभ नाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलक, असंप्राप्ता सृपाटिका), १० स्पर्श ८ (कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण) ११ रस ५ (तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल, मधुर), १२ गन्ध २ (सुगन्ध, दुर्गन्ध), १३ वर्ण ५ (शुक्ल, कृष्ण, नील, रक्त, पीत), १४ आनुपूर्व्य ४ (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव गत्यानुपूर्व्य), १५ अगुरुलघु, १६ उपघात, १७ परघात, १८ आतप, १९ उद्योत, २० उच्छ्वास, २१ विहायो गति २ (प्रशस्त, अप्रशस्त), २२ प्रत्येक शरीर, २३ साधारण शरीर, २४ त्रस,

२५ स्थावर, २६ सुभग, २७ दुर्भग, २८ सुस्वर, २९ दुस्वर, ३० शुभ, ३१ अशुभ, ३२ सूक्ष्म शरीर, ३३ बादर शरीर, ३४ पर्याप्ति, ३५ अपर्याप्ति, ३६ स्थिर, ३७ अस्थिर, ३८ आदेय, ३९ अनादेय, ४० यशःकीर्ति, ४१ अयशःकीर्ति, ४२ तीर्थंकरत्व (भेदों की विवक्षा से ये ९३ प्रकृतियां हैं) नाम कर्म की हैं ॥११॥

गोत्र (जिस कर्म का उदय उच्च गोत्र के प्राप्त करने में निमित्त है, वह उच्च गोत्र तथा नीच गोत्र के प्राप्त करने में निमित्त, वह नीच गोत्र ये दो गोत्र कर्म के भेद हैं ॥१२॥

अन्तराय कर्म की पांच प्रकृतियां (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) जिसका उदय दानादि करने के भाव न होने देने में निमित्त हो वह अन्तराय कर्म है ॥१३॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अन्तराय इन चार

को सबसे बड़ी स्थिति तीस कोड़ा कोटी सागरोप
है ॥ १४ ॥

मोहनीय की जियादा से जियादा स्थिति सत्तर कोड़ा कोडी सागर की है ॥ १५ ॥

नाम और गोत्र की बड़ी स्थिति बीस कोड़ा कोड़ी सागर की है ॥ १६ ॥

आयु की बड़ी स्थिति तेतीस सागर की है ॥ १७ ॥

वेदनीय की कम से कम स्थिति बारह मुहूर्त (नौ घंटे छत्तीस मिनट) की है ॥ १८ ॥

नाम और गोत्र की कम से कम स्थिति (टिकाव) आठ मुहूर्त (छह घन्टे चौबीस मिनट) की है ॥ १९ ॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय आयु इन पाँच की कम से कम स्थिति अन्तर्मुहूर्त (अड़तालीस

...नाट के मीठा भोजन) को है ॥ २० ॥

कर्मों में विविध प्रकार के फल देने की शक्ति का ...र जाना, उसे अनुभव कहते हैं ॥ २१ ॥

-वह जिस कर्म का जैसा नाम है उसके अनुसार ...होता है ॥ २२ ॥

और उसके बाद (फल मिल जाने के बाद) निर्जरा (वह कर्म फल देकर आत्मा से अलग हो जाता है) ...होती है ॥ २३ ॥

प्रति समय योग विशेष से कर्म प्रकृतियों के कारण ...सूक्ष्म, सूक्ष्म, एक क्षेत्रावगाही और स्थित अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु सब आत्म प्रदेशों में सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

(नोटः—इस सूत्र में (१) इन बँधने वाले कर्मों द्वारा ही ज्ञानावरणादि अलग अलग प्रकृतियों का निर्माण

(८) प्रति समय बंधने वाले कर्म परमाणु अनन्तानन्त होते हैं।

उक्त पाठ बातों में प्रदेश बन्ध विषयक प्रकाश डाला है ॥२४॥)

साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र ये प्रकृतियां पुण्य रूप हैं ॥२५॥

शेष सब प्रकृतियां पाप रूप हैं ॥२६॥

इस अध्याय में बन्ध हेतु लक्षण भेद मूल उत्तर प्रकृति नाम तथा उनकी स्थिति और पुण्य पाप प्रकृति आदि का कथन किया है ॥१॥

॥ इति आठवां अध्याय ॥

पूर्वक प्रवृत्ति न होना गुप्ति है ॥ ४ ॥

समिति पांच है १. ईर्या (दस्तगचार पूर्वक चलना) २. भाषा (हित मित प्रिय वचन बोलना) ३. एषणा (निर्दोष आहार लेना), ४. आदान निक्षेपण (देख शोध कर वस्तु को उठाना व रखना), ५. उत्सर्ग (जन्तु रहित भूमि पर मल मूत्रादि त्याग करना) ये पांच समिति है ॥ ५ ॥

धर्म के दस भेद हैं १. उत्तम क्षमा (क्रोध के कारण मिलने पर भी सहनशीलता का बना रहना) २. उत्तम मार्दव (अहंकार न होकर नम्र भाव होना), ३. उत्तम आर्जव (मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को सरल रखना) ४. उत्तम शौच (सब प्रकार के लोभ का त्याग करना) ५. उत्तम सत्य (हित मित प्रिय वचन बोलना), ६. उत्तम संयम (छह काय के जीवों की रक्षा करना और इन्द्रियों को अपने अपने विषयों में प्रवृत्त नहीं होने देना) ७ उत्तम तप (इच्छाओं का रुक जाना), ८. उत्तम त्याग (संयमियों

में स्थित प्राणी नाना दुख भोग रहे हैं, प्रादि लोक के स्वभाव का चिन्तन करना ।),११ बोधि दुर्लभ (रत्नत्रय रूप बोधि को प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है ।), १२. धर्म (जिन देव द्वारा प्रतिपादित धर्म धारण करने से ही इस आत्मा का संसार परिभ्रमण छूटता है और ये शुद्ध परमात्म पद प्राप्त कर लेती है । ये १२ भावना हुई ॥७॥

मार्ग से च्युत न होने के लिये, और कर्मों का क्षय करने के लिये, जो सहन करने के योग्य हों वे परीषह हैं ॥८॥

जो बाईस हैं । भूख २ प्यास ३ सर्दी ४ गर्मी ५ डांस मच्छर काटने की ६ नंगे रहने की ७ संयम में अरुचि न करने की ८ स्त्रियों के हाव भाव से मन में विकृति न आना ९ पैदल चलने की १० आसन स्थिर रखने की ११ भूमि पर सोने की १२ दुर्वचनों की १३ बंध

प्रत्यंग छेदने को १४ याचना नहीं करना १५ भोजनादि न मिलने को १६ रोग जनित पीडा को १७ कांटे आदि चुभने की १८ मलिन शरीर होने को १९ आदर सत्कार न होने को २० विद्वता का मद न करना २१ ज्ञान की कमी से खेद खिन्न न होने को २२ तप में अश्रद्धा न होने देने को। इस प्रकार बाईस परीषह हैं ॥९॥

दसवें, ग्यारहवें, बारहवें गुण स्थानवर्ती जीवों के चौदह परीषह सम्भव हैं ॥ १० ॥

केवली भगवान के गियारह सम्भव परीषह हैं ॥११॥

छठे, सातवें, आठवें नौवें गुण स्थानवर्ती जीवों के बाईस परीषह हो सम्भव हैं ॥ १२ ॥

ज्ञानावरण कर्म के उदय के निमित्त से प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होती हैं ॥ १३ ॥

दर्शन मोह के सद्भाव में प्रदर्शन और अन्तराय कर्म के सद्भाव में अलाभ परीषह होती है ॥ १४॥

चारित्र मोहनीय के उदय में नग्नता, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार पुरस्कार। ये सात परीषह होती हैं ॥ १५॥

बाकी की गियारह परीषह वेदनीय के सद्भाव में होती हैं ॥ १६॥

एक ही जीव में एक साथ अधिक से अधिक उन्नीस परीषह हो सकती हैं ॥ १७॥

चारित्र पाँच प्रकार का है:—

१. सामायिकः—(सामायिक में समय शब्द का अर्थ सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम, तप। इनके साथ एकत्व स्थापित करना। तात्पर्य यह है कि राग द्वेष का निरोध करके आवश्यक कार्यों में समता भाव बनाये रखना।)

२. छेदोपस्थापना:— (प्रमाद जनित दोषों का परिहार कर व्रत में स्थिर होना ।)

३. परिहार विशुद्धि:—(जो तीस वर्ष तक सुख पूर्वक घर में रहा । अनन्तर दीक्षा लेकर जिसने तीर्थंकर के पाद मूल में प्रत्याख्यान पूर्वका अध्ययन किया । उसे परिहार विशुद्धि चारित्र की प्राप्ति होती है ।)

४. सूक्ष्म साम्पराय:—(दसवें गुण स्थान का चारित्र ।)

५. यथाख्यात चारित्र:—(यह ग्यारहवें गुण स्थान से होता है ।)

यह पाँचों प्रकार का चारित्र संवरका प्रयोजक है ॥ १८ ॥

बाह्य द्रव्य का सम्बन्ध होने से जो दूसरों को देखने में आवे । वह बाह्य तप छह प्रकार का है:—

दर्शन मोह के सद्भाव में अदर्शन और अन्तराय कर्म के सद्भाव में अलाभ परीषह होती है ॥ १४ ॥

चारित्र मोहनीय के उदय में नग्नता, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार पुरस्कार। ये सात परीषह होती हैं ॥ १५ ॥

बाकी की गियारह परीषह वेदनीय के सद्भाव में होती हैं ॥ १६॥

एक ही जीव में एक साथ अधिक से अधिक उन्नीस परीषह हो सकती हैं ॥ १७ ॥

चारित्र पाँच प्रकार का है:—

१. सामायिक:—(सामायिक में समय शब्द का अर्थ सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम, तप। इनके साथ एक्य स्थापित करना। तात्पर्य यह है कि राग द्वेष का निरोध करके आवश्यक कार्यों में समता भाव बनाये रखना।)

२. छेदोपस्थापनाः— (प्रमाद जनित दोषों का परिहार कर व्रत में स्थिर होना ।)

३. परिहार विशुद्धिः—(जो तीस वर्ष तक सुख पूर्वक घर में रहा । अनन्तर दीक्षा लेकर जिसने तीर्थंकर के पाद मूल में प्रत्याख्यान पूर्वका अध्ययन किया । उसे परिहार विशुद्धि चारित्र की प्राप्ति होती है ।)

४. सूक्ष्म साम्परायः—(दसवें गुण स्थान का चारित्र ।)

५. यथाख्यात चारित्रः—(यह गियारहवें गुण स्थान से होता है ।)

यह पाँचों प्रकार का चारित्र संवरका प्रयोजक है ॥ १८ ॥

बाह्य द्रव्य का सम्बन्ध होने से जो दूसरों को देखने में आवे । वह बाह्य तप छह प्रकार का है:—

१. अनशन—(भोजन का त्याग।)

२. अवमौदर्य—(भूख से कम खाना।)

३. वृत्ति परि संख्यान—(आहार के लिये घर आदि की संख्या का नियम।)

४. रस परित्याग—(घी आदि रसों का त्याग।)

५. विविक्त शय्यासन—(एकान्त स्थान में शयन व आसन।)

६. कायक्लेश—(देह से ममत्व त्याग कर तप करना।)

ये छह बाह्य तप हैं ॥ १६ ॥

जिसमें मानसिक क्रिया की प्रधानता हो। जो सबके देखने में न आवे, वह आभ्यन्तर तप छह प्रकार का है:—

१. प्रायश्चित्त—(प्रमाद जनित दोषों का शोधन

करना ।)

२. विनय—(पूज्य जनों में आदर भाव ।)

३. वैया वृत्य—(सेवा सुश्रूषा ।)

४. स्वाध्याय—(ज्ञानाभ्यास ।)

५. व्युत्सर्ग—(अहंकार-ममकार का त्याग ।)

६. ध्यान—(चित्त की व्याकुलता का त्याग ।)

ये छह अन्तरंग तप हैं ॥ २० ॥

ध्यान से पहले के पाँच तपों के क्रम से नौ, चार, दस, पांच, दो भेद हैं ॥ २१ ॥

१. आलोचना—(अपने दोष का निवेदन गुरु के सामने करना ।)

२. प्रतिक्रमण—(किये गये अपराध के प्रति मेरा दोष मिथ्या हो, निवेदन कर पुनः वैसे दोषों से बचना ।)

करना ।)

२. विनय—(पूज्य जनों में आदर भाव ।)

३. वैया वृत्य—(सेवा सुश्रूषा ।)

४. स्वाध्याय—(ज्ञानाभ्यास ।)

५. व्युत्सर्ग—(अहंकार-ममकार का त्याग ।)

६. ध्यान—(चित्त की व्याकुलता का त्याग ।)

ये छह अन्तरंग तप हैं ॥ २० ॥

ध्यान से पहले के पाँच तपों के क्रम से नौ, चार, दस, पांच, दो भेद हैं ॥ २१ ॥

१. आलोचना—(अपने दोष का निवेदन गुरु के सामने करना ।)

२. प्रतिक्रमण—(किये गये अपराध के प्रति मेरा दोष मिथ्या हो, निवेदन कर पुनः दोष हो ... ।)

३. तदुभय—(आलोचना और प्रतिक्रमण इन दोनों का एक साथ करना ।)

४. विवेक—(किसी कारण से अप्रासुक द्रव्य का आ जाने हुए प्रासुक द्रव्य का ग्रहण हो जाय, तो स्मरण कर उसका त्याग करना ।)

५. व्युत्सर्ग—(मन में बुरे विचार आदि आने पर, उस दोष के परिहार के लिये ध्यान पूर्वक नियत समय तक कायोत्सर्ग करना ।)

६. तप—(दोषों के परिहार के लिये अनशनादि करना ।)

७. छेद—(दोष दूर करने के लिये, कुछ समय की दीक्षा का छेद करना ।)

८. परिहार—(किसी भारी दोष के दूर करने के लिये, कुछ समय के लिये संघ से अलग रखना ।)

६. उपस्थापना—(किसी बड़े दोष के दूर करने के लिये, पूरी दीक्षा का छेद करके फिर से दीक्षा देना ।)

ये नौ प्रायश्चित्त के भेद हैं ॥ २२ ॥

१. ज्ञान विनय—(मोक्षोपयोगी ज्ञान प्राप्त करना, उसका अभ्यास चालू रखना, अभ्यस्त का स्मरण रखना ।)

२. दर्शन विनय—(निर्दोष सम्यग्दर्शन पालन करना ।)

३. चारित्र विनय—(सामायिकादि चारित्र के पालन करने में चित्त को सावधान रखना ।)

४. उपचार विनय—(आचार्य आदि की समुचित विनय करना ।)

यह विनय तप के चार भेद हैं ॥२३॥

जिनकी वैया वृत्य की जाती है । वे दस प्रकार के

१. आचार्य-(जो व्रतों का आचरण करावें ।)

२. उपाध्याय-(मोक्षोपयोगी शास्त्रों के पाठक ।)

३. तपस्वी-(कठोर तप करने वाले ।)

४. शैक्ष-(शिक्षा लेने वाले ।)

५. ग्लान-(जिनकी देह रोगाक्रान्त है ।)

६. गण-(जो स्थविरों की सन्तति के हैं ।)

७. कुल-(दीक्षा देने वाले आचार्य की शिष्य परम्परा के ।)

८. संघ-(श्रमण समुदाय ।)

९. साधु-(चिर काल के दीक्षित ।)

१०. मनोज्ञ-(जनता में विशेष आदरणीय ।)

इन दस प्रकार के साधुओं की शरीर से व अन्य प्रकार से वैयावृत्य करना चाहिये ॥२४॥

स्वाध्याय के पाँच भेद हैं:—

१. वाचना-(ग्रंथ और अर्थ या दोनों को निर्दोष रीति से पढ़ना ।)

२. पृच्छना-(शंका मिटाने के लिये पूछना ।)

३. अनुप्रेक्षा-(पढ़े हुये पाठ का पुनः २ चिंतन करना ।)

४. आम्नाय-(पाठ का शुद्धता पूर्वक उच्चारण करना ।)

५. धर्मोपदेश-(धर्म कथा करना ।)

ये पाँच प्रकार का स्वाध्याय है ॥२५॥

व्युत्सर्ग तप के दो भेद हैं:—

१. बाह्योपधि त्याग—(धन, धान्य, मकानादि बाह्य परिग्रह से ममता का त्याग।)

२. अभ्यन्तरोपधि—(क्रोधादि रूप आत्म परिणाम अन्तरंग परिग्रह का त्याग।) ये दो भेद हैं ॥२६॥

उत्तम संहनन वाले का एक विषय में चित्त वृत्ति का रोकना ध्यान है। जो अन्तर्मुहूर्त तक होता है ॥२७॥

१. आर्तध्यान—(जो दुख की व्याकुलता में निमित्त है।)

२. रौद्र ध्यान-(जो क्रूर परिणामों के निमित्त से होता है।)

३. धर्म्य ध्यान-(जो शुभ राग और सदाचरण का रक्षक है।)

४. शुक्ल ध्यान-(मन की अत्यन्त निर्मलता से जो एकाग्रता होती, वह ।) ये ध्यान के चार भेद हैं ॥२८॥

अन्त के दो ध्यान मोक्ष के हेतु हैं ॥२६॥

अप्रिय वस्तु के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिये बारम्बार चिन्ता करना, पहला आर्तध्यान है ॥३०॥

प्रिय वस्तु के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति के लिये निरन्तर चिन्ता करना, दूसरा आर्त ध्यान है ॥३१॥

वेदना के होने पर उसके दूर करने के लिये लगातार सोच करना, तीसरा आर्तध्यान है ॥३२॥

आगामी विषय की प्राप्ति के लिये सदैव चिन्तन करना, चौथा आर्तध्यान है ॥३३॥

यह आर्तध्यान अविरत (प्रथम

तक), देश विरत (पाँचवे गुण स्थानवर्ती जीवों के), प्रमत्त संयत (छटे गुण स्थानवर्ती मुनि) के होता है ॥१३॥

१. हिंसानन्दी, २. मृषानन्दी, ३. चौर्यानन्दी, ४. परिग्रहानन्दी (हिंसा, झूंठ, चोरी, विषय संरक्षण (परिग्रह) के लिये सतत चिन्तवन करना) ये चार प्रकार का रौद्र ध्यान है, इसका सद्भाव अविरत (पहिले से चौथे गुणस्थान तक) और देश विरत (पाँचवां) गुणस्थान वर्ती जीवों के पाया जाता है ॥१४॥

आज्ञा, अपाय, विपाक, संस्थान । इनको विचारार्थ निमित्त मन को एकाग्र करना धर्म्य ध्यान है—

१. आज्ञा विचय-(जो जिन देव की आज्ञा है वह प्रमाण है । ऐसा किसी भी पदार्थ के विचार करते समय ध्यान करना ।)

२. अपाय विचय–(जो मिथ्या मार्ग पर स्थित हैं उनका मिथ्या मार्ग से छुटकारा कैसे हो। इस ओर सदैव विचार करना।)

३. विपाक विचय–(द्रव्य, क्षेत्र, काल भव, भाव की अपेक्षा कर्म कैसे कैसे फल देते हैं। इसका निरन्तर चिन्तवन करना।)

४. संस्थान विचय–(लोक का आकार और उसके स्वरूप के चिन्तन में अपने मन को लगाना।)

ये धर्म्यध्यान के चार भेद हैं ॥३६॥

आदि के दो शुक्ल ध्यान (पृथक्त्व वितर्क, एकत्व वितर्क) पूर्व विद के होते हैं ॥३७॥

बाद के दो (सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती, व्युपरत क्रिया

निवर्ति) शुक्ल ध्यान, सयोग केवली और अयोग केवली के होते हैं ॥३८॥

पृथक्त्व वितर्क, एकत्व वितर्क, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति, व्युपरत क्रिया निवर्ति ये चार शुक्ल ध्यान हैं ॥३९॥

पहला शुक्ल ध्यान तीनों योग वालों के, दूसरा किसी एक योग वाले के, तीसरा काय योग वालों के, चौथा अयोग केवली के होता है ॥ ४० ॥

प्रथम के दो एकाश्रय वाले (पूर्वधारी) के सवितर्क और सवीचार होते हैं ॥ ४१ ॥

दूसरा ध्यान अवीचार है ॥ ४२ ॥

वितर्क का अर्थ श्रुत है । श्रुत ज्ञान को वितर्क

(यानि विशेष प्रकार से तर्क करने को वितर्क)' कहते हैं ॥४३॥

अर्थ व्यन्जन और योगों की पलटन को वीचार कहते हैं ॥४४॥

सम्यग्दृष्टि (अविरत), श्रावक (विरताविरत), विरत (सर्वविरत = महाव्रती), अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करने वाला, दर्शन मोह का क्षय करने वाला, उपशम श्रेणी पर आरूढ़ प्राणी, उपशान्त मोह वाला, क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ प्राणी, क्षीण मोह गुणस्थान वर्ती जीव, जिनेन्द्र भगवान । ये दस स्थान अनुक्रम से असंख्यात असंख्यात गुणी निर्जरा वाले हैं ॥४५॥

पुलाक (जिनके मूलगुण भी पूर्णता को प्राप्त नहीं

निवर्ति) शुक्ल ध्यान, सयोग केवली और अयोग केवली के होते हैं ॥३८॥

पृथक्त्व वितर्क, एकत्व वितर्क, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति, व्युपरत क्रिया निवर्ति ये चार शुक्ल ध्यान हैं ॥३९॥

पहला शुक्ल ध्यान तीनों योग वालों के, दूसरा किसी एक योग वाले के, तीसरा काय योग वालों के, चौथा अयोग केवली के होता है ॥ ४० ॥

प्रथम के दो एकाश्रय वाले (पूर्वधारी) के सवितर्क और सवीचार होते हैं ॥ ४१ ॥

दूसरा ध्यान अवीचार है ॥ ४२ ॥

वितर्क का अर्थ श्रुत है । श्रुत ज्ञान को वितर्क

(यानि विशेष प्रकार से तर्क करने को वितर्क)' कहते हैं ॥४३॥

अर्थ व्यन्जन और योगों की पलटन को वीचार कहते हैं ॥४४॥

सम्यग्दृष्टि (अविरत), श्रावक (विरताविरत), विरत (सर्वविरत = महाव्रती), अनन्तानुवन्धी का विसंयोजन करने वाला, दर्शन मोह का क्षय करने वाला, उपशम श्रेणी पर आरूढ़ प्राणी, उपशान्त मोह वाला, क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ प्राणी, क्षीण मोह गुणस्थान वर्ती जीव, जिनेन्द्र भगवान । ये दस स्थान अनुक्रम से असंख्यात असंख्यात गुणी निर्जरा वाले हैं ॥४५॥

पुलाक (जिनके मूलगुण भी पूर्णता को प्राप्त नहीं

हैं।), बकुश (जो व्रतों को पूरी तरह पालते हों किन्
शरीर उपकरणादि की शोभा तथा यशादि की लिप्स
से युक्त हों।), कुशील (१. प्रतिसेवना-परिग्रह की
आसक्ति वश, मूलगुणों और उत्तर गुणों को पालते हुये
भी जो कदाचित् उत्तर गुणों की विराधना कर लेते हैं
वे प्रतिसेवना कुशील हैं। २ जो अन्य कषायों पर विजय
पाकर भी संज्वलन कषाय के आधीन हैं। वे कषाय
कुशील हैं।) निर्ग्रन्थ (राग द्वेष का अभाव कर जो
अन्तर्मुहूर्त में केवल ज्ञान को प्राप्त करते हैं।)
स्नातक (जो सर्वज्ञ हैं, वे स्नातक) निर्ग्रन्थ हैं। ये पाँच
प्रकार के निर्ग्रन्थ साधु हैं ॥ ४९ ॥

संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद,
स्थान इन आठ भेदों से पुलाकादि निर्ग्रन्थों का व्याख्यान

करना चाहिये ॥४७॥

इस अध्याय में संवर, समिति, गुप्ति, चारित्र, तप, धर्म, भावना, निर्जरा, मुनि गण आदि का वर्णन किया गया है ॥१॥

❁ इति नौवाँ अध्याय ❁

॥ अथ दसवाँ अध्याय ॥

✿ मोक्ष तत्त्व ✿

मोह के क्षय से और ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय के क्षय से केवल ज्ञान प्रकट होता है ॥१॥

बन्ध के कारणों के नहीं रहने से, और निर्जरा द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का, विस कुल क्षय होना ही मोक्ष है ॥२॥

तथा औपशमिक, क्षायोप शमिक, औदयिक, भव्यत्व, भाव के अभाव होने से मोक्ष होता है ॥३॥

पर केवल सम्यक्त्व, केवल ज्ञान, केवल दर्शन, और

सिद्धत्व भाव का अभाव नहीं होता ॥४॥

सब कर्मों का वियोग होने के पीछे ही मुक्त जीव ऊपर की ओर लोक के अन्त तक जाता है ॥५॥

पूर्व प्रयोग से (पूर्व संस्कार के वेग से) संग के अभाव से, बन्धन के टूटने से, तथा ऊर्ध्व गमन स्वभाव होने से, मुक्त जीव ऊपर को जाता है ॥६॥

कुम्हार द्वारा घुमाये हुए चाक के समान, लेप से मुक्त तूंबड़ी के समान, एरण्ड के बीज के समान, आग की शिखा (लौ) के समान, इन दृष्टान्तों के अनुसार मुक्त जीव स्वभाव से ऊपर को ही जाता है ॥७॥

धर्मास्ति काय का अभाव होने से मुक्त जीव लोकान्त से ऊपर अलोकाकाश में नहीं जाता ॥८॥

क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्ध
बोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या, अल्प बहुत्व,
इन बारह बातों से सिद्ध जीव विभाग करने योग्य हैं ॥९॥

इस अध्याय में केवल ज्ञान का कारण,
तथा चार परिणाम, मोक्ष, ऊर्ध्वगमन,
सिद्ध भेदादि की प्ररूपणा की गई है ॥१॥

• इति दसवाँ अध्याय •

इस ग्रंथ में कहीं पर अक्षर, मात्रा, पद, स्वर, व्यञ्जन, सन्धि, रेफ, आदि की गलती रह गई हो तो उस भूल के लिये सन्त जन मुझे क्षमा प्रदान करें। क्योंकि शास्त्र रूपी समुद्र में कौन गोते नहीं खाता ॥१॥

दस दस अध्याय वाले तत्वार्थ सूत्र का भाव पूर्वक पठन करने से एक उपवास करने का फल होता है, ऐसा श्रेष्ठ मुनिराजों ने कहा है ॥२॥

गृद्ध पिच्छिका से उपलक्षित, इस तत्वार्थ सूत्र, के, रचयिता, आचार्य श्री उमा स्वामी को हम नमस्कार करते हैं ॥३॥

मह,भाषा तत्वार्थ सूत्र (मोक्ष शास्त्र)

ी पन्नालालजी जैन भार्चो टेक्ट दिल्ली निवासी को ... कर मुफ म. पं. सरदारमल जैन 'सच्चिदानन्द, (सुपुत्र स्व. श्री हुकमचन्दजी 'वैद्यरत्न') सिरोंज निवासी ने, भाषाढ शुक्ला प्रति पदा, बुधवार ता० २६-६-६८ श्री वीर सं० २४६४ वि० सं० २०२५ को पूर्ण किया।

॥ शुभम् भूयात् ॥

पद

(तर्ज-कैसे सपरी)

तेरी सारीरे उमरिया यूं ही गुजरी ॥१॥

बचपन गयो जवानी आई, देखत आयो बुढ़ापा ।
तरनो कछु न कीनी भाई, भ्रम में भूल्यो आपा ॥

भटके माया की नगरिया ॥२॥

ऊंचो ऊंचो पदवी पाई, दौलत खूब कमाई ।
भूखे मरते भाई बहिनें, तरस जरा नहिं आई ॥
मोह नींद में ऐसा सोया, पलकी खबर न पाई ।

छलके जोवन की गगरिया ॥३॥

सोच जरा कुछ मेरे भाई, करले हित की बातें ।
वरना दुर्गति होगी तेरी, वहां खाउगे लातें ॥

कोई पूछे न खबरिया ॥४॥

मानुष भव दुर्लभ है प्यारे, सम्यक ज्योति जगाले ।
सत् चित् आनन्द में तन्मय हो, अपने ही गुण गाले ॥

तिष्ठ शिव पुर की नगरिया ॥५॥

पद

सुन जग प्रानी, हित की बानी, तू कर निज की पहचान रे

तेरी छूट जाय, भव भांवरिया ॥१॥

चारों गति में कदम कदम पर ममता भाव का डेरा ।
समझ मिटादे मिथ्या परिणति, हो शिवपुर में बसेरा ॥

तेरा हो शिवपुर में बसेरा ॥२॥

कठिन कठिन से नर भव पाया, क्यों विषयों में गंवावे ।
इनमें रचपच करके प्रानी, कभी न शिव पद पावे ॥

प्रानी कभी न शिव पद पावे ॥३॥

साधु पन धर करके निश दिन, खोलो आखें तेरी ।
कर चिर आनन्द परख महोनिश, मिटे जगत की फेरी ॥

तेरी मिटे जगत की फेरी ॥४॥

पद

(तर्ज-जय जय हे जगदम्बे माता)

जय जय जय जिनवाणी माता ॥१॥

निरभिमान हो जो कोई ध्याता।
मुक्ति रमा को वह पा जाता ॥२॥

मोह महा मद नाशन हारी।
सब जीवों की हैं हितकारी ॥
तेरा सहारा जिसने पाया।
सत् सत् शिव मारग पा जाता ॥३॥

सत् चित् आनन्द की तू दाता।
तुम से निज स्वरूप को जाना ॥
निज में निज से लीन होय कर।
फिर निजमें ही वह रम जाता ॥४॥

पद

(तर्ज-म्हारो फूल बरसाओ०)

लखा जबसे मैंने मुझको, मुझे निज रूप भाया है।
तभी दुविधा मिटी मनकी, निज में निज समाया है ॥१॥

अतुल सुख ज्ञान का धारी, दरश बल पूर्ण हितकारी ॥
जान सामर्थ्य अपनी को, सहज आनन्द छाया है ॥२॥

द्रव्य और भाव, कर्मों से, जुदा हूं मैं अनादी से ।
शुद्ध नय से परख निजको, विभावों को मिटाया है ॥३॥

निरंजन निर्विकारी हूं, सदानन्द वीतरागी हूं ॥
सच्चिदानन्द अपने में हि, ज्ञायक भाव पाया है ॥४॥

पद

(तर्ज-बार २ तुझे क्या समझावें, पायल की झंकार)

निज स्वरूप को भूल चिदानन्द, भटकत फिरे गंवार ।
जनम मरण के दुखड़े, सहता रहा अपार ।।१।।

काल अनादी से अपने को भूल रहा ।
पर में ममता झूंठी करके फूल रहा ।।
पर परिणति को अब तो तज दे, क्यों हो रहा खवार ।।२।।

निज स्वरूप हो, पर स्वरूप क्यूं बन गया ।
निर्विकार हो, सविकारी क्यूं हो गया ।।
संभल जरा तू होश में आजा, निज अनुभव को धार ।।३।।

सत् चित् आनन्द सहजानन्द का स्वामी है ।
अनुपम महिमा छाई जग में नामी है ।।
अपनी रजधानी पाने को, कर अब निज दीदार ।।४।।

पद

सुन जग प्रानी, हित की बानी, तू कर निज को पहचान रे

तेरी छूट जाय, भव भांवरिया ॥१॥

चारों गति में कदम कदम पर ममत भाव का डेरा ।
समझ मिटादे मिथ्या परिणति, हो शिवपुर में बसेरा ॥

तेरा हो शिवपुर में बसेरा ॥२॥

कठिन कठिन से नर भव पाया, क्यों विषयों में गंवाये ।
इनमें रचपच करके प्रानी, कभी न शिव पद पाये ॥

प्रानी कभी न शिव पद पाये ॥३॥

आयु पल पल करके निश दिन, बीती जाये तेरी ।
सत चित आनन्द धारण गहोनिज, मिटे जगत की फेरी ॥

तेरी मिटे जगत की फेरी ॥४॥

पद

(तर्ज-अब मन है सहारे माता)

जय जय जय जिनवाणी माता ॥१॥

निरभिमान हो जो कोई ध्याता ।
मुक्ति रमा को वह पा जाता ॥२॥

मोह महा मद नाशन हारी ।
सब जीवों की है हितकारी ॥
तेरा सहारा लेवे ज्ञाता ।
तत्_क्षण निज मारग पा जाता ॥३॥

सत्_चित्_आनन्द की तू दाता ।
तुझ से निज स्वरूप को जाना ॥
निज में निज से लीन होय कर ।
फिर निजमें ही वह रम जाता ॥४॥

पद

सुन जग प्रानी, हित की मानो, तू कर निज की पहचान रे

तेरी छूट जाय, भव भांवरिया ॥१॥

चारों गति में कदम कदम पर ममत भाव का डेरा।
समझ मिटादे मिथ्या परिणति, हो शिवपुर में बसेरा ॥

तेरा हो शिवपुर में बसेरा ॥२॥

कठिन कठिन से नर भव पाया, क्यों विषयों में गंवाये।
इनमें रचपच करके प्रानी, कभी न शिव पद पाये ॥

प्रानी कभी न शिव पद पाये ॥३॥

आयु पल पल करके निश दिन, बीती जाये तेरी।
सत् चित आनन्द धारण गहोनिज, मिटे जगत की फेरी ॥

तेरी मिटे जगत की फेरी ॥४॥

८६

(तर्ज-जय जय हे जगदम्बे माता)

जय जय जय जिनवाणी माता ॥१॥

निरभिमान हो जो कोई ध्याता ।
मुक्ति रमा को वह पा जाता ॥२॥

मोह महा मद मारन हारी ।
सब जीवों की है हितकारी ॥
तेरा सहारा लिने वाला ।
सत् सत् निज मारग पा जाता ॥३॥

सत् चित् आनन्द की तू दाता ।
तुझ से निज स्वरूप को जाता ॥
निज में निज से लीन होय कर ।
फिर निजमें ही वह रम जाता ॥४॥

पद

सुन जग प्रानी, हित की वानी, तुकर निज की पहचान रे

तेरी छूट जाय, भव भांवरिया ॥१॥

चारों गति में कदम कदम पर ममत भाव का डेरा ।
समझ मिटादे मिथ्या परिणति, हो शिवपुर में बसेरा ॥

तेरा हो शिवपुर में बसेरा ॥२॥

कठिन कठिन से नर भव पाया, क्यों विषयों में गंवाये ।
इनमें रचपच करके प्रानी, कभी न शिव पद पाये ॥

प्रानी कभी न शिव पद पाये ॥३॥

आयु पल पल करके निश दिन, क्षीणी जाये तेरी ।
सत चित आनन्द धरण गहोनित, मिटे जगत की फेरी ॥

तेरी मिटे जगत की फेरी ॥४॥

८८

(तर्ज—जय जय हे भगवती माता)

जय जय जय जिनवाणी माता ॥१॥

निर्विकार हो जो कोई ध्याता ।
मुक्ति रमा को वह पा जाता ॥२॥

मोह महा मद मादक हारी ।
सब जीवों की है हितकारी ॥
तेरा सहारा जिसे साधा ।
हम तुम शिव मारग पा जाता ॥३॥

सत् चित् आनन्द की तू दाता ।
तुझ से निज स्वरूप को जाता ॥
निज में निज से लीन होय कर ।
फिर निजमें ही वह रम जाता ॥४॥

पद

सुन जग प्रानी, हित की बानी, तूकर निज की पहचान रे
तेरी छूट जाय, भव भांवरिया ॥१॥

चारों गति में कदम कदम पर ममत भाव का डेरा ।
समझ मिटादे मिथ्या परिणति, हो शिवपुर में बसेरा ॥
तेरा हो शिवपुर में बसेरा ॥२॥

कठिन कठिन से नर भव पाया, क्यों विषयों में गंवाये ।
इनमें रचपच करके प्रानी, कभी न शिव पद पाये ॥
प्रानी कभी न शिव पद पाये ॥३॥

आयु पल पल करके नित दिन, बीती जाये तेरी ।
तू चित आनन्द धरण अहोनिश, मिटे जगत की फेरी ॥
तेरी मिटे जगत की फेरी ॥४॥

पद

(तर्ज-जय जय है जगदम्बे माता)

जय जय जय जिनवाणी माता ।।१।।

निरभिमान हो जो कोई ध्याता ।
मुक्ति रमा को वह पा जाता ।।२।।

मोह महा मद नाशन हारी ।
सब जीवों की है हितकारी ।।
तेरा सहारा जिने थामा ।
सत् राह शिव मारग पा जाता ।।३।।

सत् चित् आनन्द की तू दाता ।
तुझ मे निज स्वरूप को पाता ।।
निज में निज से लीन होय कर ।
फिर निजमें ही वह रम जाता ।।४।।